एक अनोखी मछली

अरविन्द गुप्ते



इस मछली की कहानी की शुरुआत से पहले हमें कुछ बातें समझनी होंगी। जुरासिक पार्क नामक अँग्रेज़ी फिल्म ृंखला में एक ऐसा द्वीप दिखाया गया है जिसमें जीवित डायनासौर रहते हैं। यह केवल एक काल्पनिक कहानी है क्योंकि डायनासौर आज से लगभग साढ़े छह करोड़ वर्ष पहले विलुप्त हो गए थे और अब उनके जीवाश्म ही पाए जाते हैं।

जैसे डायनासौर अब जीवाश्मों के रूप में पाए जाते हैं उसी प्रकार विलुप्त मछलियों का एक बड़ा समूह, जिसे एक्टिनिस्टिया (Actinistia) कहते हैं, भी केवल जीवाश्मों के रूप में पाया जाता है। इनके जीवाश्म 35 करोड़ वर्ष पुरानी चट्टानों में मिलते हैं। एक समय में ये मछलियाँ समुद्र में बहुतायत में पाई जाती थीं। इन मछलियों को साधारण भाषा में सीलाकैन्थ कहते हैं। डायनासौर के समान यह समूह भी लगभग साढ़े छह करोड़ वर्ष पहले ही विलुप्त हो गया था। इस समूह की मछलियों को जैव-विकास की दृष्टि से इसलिए महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि उनके शरीर की बनावट इस ओर इशारा करती है कि मछलियों से धरती पर

जीवाश्म किसे कहते हैं?

किसी भी विलुप्त जन्तु या पौधे के किसी समय जीवित होने का प्रमाण जीवाश्म कहलाता है। जब किसी मृत जीवधारी का शरीर मिट्टी में दब जाता है तब उसके शरीर के नरम भाग गल जाते हैं और कठोर भाग धीरे-धीरे (करोड़ों वर्षों में) पत्थर में बदल जाते हैं। जब ये पत्थर किसी कारण से पृथ्वी की सतह पर आ जाते हैं तब उनके अध्ययन से उस जीवधारी की शरीर रचना के बारे में बहुत सारी जानकारियाँ मिल जाती हैं। जिन जन्तुओं में हड्डियाँ होती हैं उनकी हड्डियाँ प्रायः जीवाश्मों के रूप में मिलती हैं। इनके अलावा, अण्डे और घोंघों और शंखों के कवच भी जीवाश्मों के रूप में पाए जाते हैं। भारत के कई भागों में विलुप्त हो चुके वृक्षों के तने पत्थर के रूप में पाए जाते हैं। यदि कोई विलुप्त कीड़ा गीली मिट्टी पर रेंगते हुए अपना निशान छोड़ गया हो और बाद में यह मिट्टी चट्टान में बदल गई हो तो कीड़े के रेंगने के निशान को भी जीवाश्म कहा जाता है।

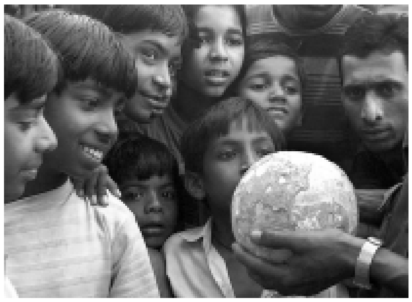
रहने वाले जन्तुओं का विकास कैसे हुआ होगा। वैज्ञानिकों की मान्यता है कि ये मछलियाँ अपने मांसल पंखों (fins) की सहायता से ज़मीन पर चलने लगीं और हवा में साँस लेने लगीं और इस प्रकार उभयचर जन्तुओं (मेंढक वगैरह) का विकास हुआ। उभयचर जन्तुओं के बाद में सरीसृपों, पक्षियों और स्तनधारियों का विकास हुआ। इन मछलियों के जीवाश्म लगभग संसार के सभी बड़े संग्रहालयों में देखे जा सकते हैं।

पानी में तैरते समय ये मछलियाँ अपने पंखों को इस प्रकार चलाती हैं जैसे घोड़ा दुलकी चाल से चलते समय पहले दाँईं अगली टांग के साथ बाँईं पिछली टांग और फिर बाँईं अगली टांग के साथ दाँईं पिछली टांग चलाता है।

धरती पर रहने वाले जन्तुओं के पूर्वज होने का दावा मछलियों का एक और समूह करता है। इस समूह की अधिकांश मछलियाँ भी विलुप्त हो चुकी हैं, किन्तु इनकी तीन प्रजातियाँ संसार के विभिन्न भागों में बच गई हैं। इन मछलियों में फेफड़ेनुमा अंग होते हैं जिनकी सहायता से ये मछलियाँ हवा में साँस ले सकती हैं। जैव-विकास से जुड़ी पहेली यह है कि ज़मीन पर रहने वाले जन्तुओं का विकास फेफड़े वाली मछलियों से हुआ या दो जोड़ी टांगों वाली सीलाकैन्थ मछलियों से हुआ?

एक अनोखी मछली जाल में

अब हम मूल कहानी पर आते हैं। बात सन् 1938 की है। दक्षिण अफ्रीका के पूर्वी तट पर ईस्ट लंदन नामक एक छोटा-सा बन्दरगाह है। इस छोटे-



अहमदाबाद से कुछ 80 कि.मी. दक्षिण बालासिनोर में पाया गया डायनासौर अण्डे का जीवाश्म।



हेलीकॉप्टर कीट का जीवाश्म।

से कस्बे में एक छोटा-सा संग्रहालय है जिसकी संग्रहालय अध्यक्ष मार्जरी लैटिमर नामक 32 वर्षीय अँग्रेज़ मूल की महिला थीं। मछली पकड़ने वाली एक नाव के कप्तान हेन्डरिक गूजेन से उनका परिचय था। जब भी गूजेन समुद्र से मछलियाँ पकड़ कर लौटते थे तो वे लैटिमर को बुलवा कर पकड़ी गई मछलियाँ दिखाते थे और संग्रहालय के लायक कोई मछली हो तो सहर्ष भेंट कर देते थे।

23 दिसम्बर, 1938 को गूजेन चालुम्ना नदी के मुहाने से मछलियाँ पकड़ कर लौटे तो उन्होंने हमेशा की तरह लैटिमर को न्यौता दिया। वैसे तो लैटिमर संग्रहालय से सम्बन्धित किसी अन्य काम में व्यस्त थीं, किन्तु उन्होंने सोचा कि उन्हें नाव पर काम करने वाले नाविकों को कम-से-कम बड़े दिन (25 दिसम्बर) की शुभकामनाएँ तो देना ही चाहिए। वे एक टैक्सी लेकर बन्दरगाह पहुँचीं और नाविकों से बात करके लौट ही रहीं थीं कि उनकी नज़र मछलियों के ढेर के नीचे से झाँक रहे एक नीले पंख पर पड़ी। उन्होंने उस पाँच फीट लम्बी मछली को निकलवा कर देखा। उन्हें लगा कि ऐसी मछली उन्होंने पहले कभी नहीं देखी थी और उसे तुरन्त संग्रहालय में ले जाना चाहिए। किन्तु एक कठिनाई सामने आ गई। टैक्सी ड्राइवर ने उस बड़ी भारी और बदबूदार मछली को ले जाने से मना कर दिया। खैर, काफी जद्दोजहद के बाद वह मान गया और मछली संग्रहालय में पहुँच गई। संग्रहालय में उपलब्ध सीमित पुस्तकों को खंगालने पर लैटिमर को लगा कि वह मछली एक विलुप्त मछली के चित्र के समान दिखाई दे रही थी।

तो क्या उनके हाथ एक ऐसी अनोखी मछली आई थी जिसके जीवित होने की कोई सम्भावना ही नहीं थी? उन्होंने उस मछली का एक चित्र बना कर पचास मील दूर स्थित ग्राहम्सटाउन

स्थित रोड्स विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जे.एल.बी. स्मिथ को भेजा। स्मिथ महाशय थे तो रसायन शास्त्र के प्रोफेसर, किन्तु मछलियों के सम्बन्ध में उनके ज्ञान का लोहा सब लोग मानते थे। दुर्भाग्यवश, प्रोफेसर स्मिथ उन दिनों छुट्टियाँ मना रहे थे। इस बीच लैटिमर के वरिष्ठ अधिकारी यानी ईस्ट लंदन संग्रहालय के संचालक का कहना था कि यह मछली कोई खास नहीं है और इस बदबूदार चीज़ को संग्रहालय में रखने का कोई फायदा नहीं है। मार्जरी ने मछली को सुरक्षित रखने के लिए उसे एक चादर में लपेट कर फॉर्मलीन में भिगो कर रखा, किन्तु 3-4 दिनों में मछली में सड़न के लक्षण दिखाई देने लगे। तब उन्होंने स्थानीय टैक्सीडर्मिस्ट (जानवरों की खाल में भूसा भरने वाले) से उसमें भूसा भरवा लिया। इस प्रक्रिया में सभी आन्तरिक अंग निकाल दिए जाते हैं।

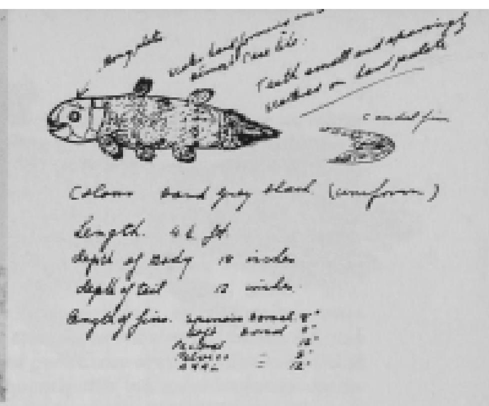
विलुप्त नहीं, जीवित जीवाश्म

इस बीच प्रोफेसर स्मिथ को लैटिमर का पत्र और मछली का चित्र मिला। उन्होंने बाद में लिखा कि चित्र देखकर उन्हें लगा था कि जैसे उनके दिमाग में कोई बम फूटा हो। वे एक ऐसे जन्तु को देख रहे थे जिसके बारे में माना जा रहा था कि वह करोड़ों वर्ष पहले विलुप्त हो चुका था। उन्होंने तुरन्त लैटिमर को तार भेज कर कहा कि उनके आने तक मछली के आन्तरिक अंगों को सुरक्षित रखा जाए। आखिर 16 फरवरी, 1939 को वे ईस्ट लंदन पहुँचे और लैटिमर के कार्यालय में एक टेबल पर रखी मछली के इर्द-गिर्द कई बार घूम-घूम कर देखा, उसे



Miss M. Courtenay-Latimer

मार्जरी लैटिमर



Miss Latimer's sketch and notes

लैटिमर द्वारा बनाया गया सीलाकैन्थ का चित्र व उस पर नोट्स

छूकर देखा और फिर बोले, “सुनो बेटी, इस खोज की चर्चा संसार के हर वैज्ञानिक की ज़ुबान पर होगी।” और हुआ भी यही। जब स्मिथ का शोध पत्र मशहूर वैज्ञानिक पत्रिका *नेचर* में प्रकाशित हुआ तो वैज्ञानिक जगत में तहलका मच गया। यह कुछ ऐसा था मानो जीवित डायनासौर मिल गया हो। चूँकि पकड़ी गई मछली एक नई प्रजाति की थी, स्मिथ ने उसका नाम *लैटिमरिया चालुम्नी* रखा। जीनस का नाम मार्जरी के उपनाम लैटिमर पर और स्पीशीज़ का नाम चालुम्ना नदी पर रखा गया।

चूँकि मछली के आन्तरिक अंग निकाल कर फेंक दिए गए थे, स्मिथ को लगा कि इसी प्रजाति की एक मछली और मिल जाए तो उसका पूरा अध्ययन किया जा सकता है। उन्होंने अफ्रीका के पूर्वी तट के गाँवों में सब तरफ मछली के चित्र वाले पोस्टर लगवाए और मछली पकड़ने वाले के लिए इनाम की घोषणा कर दी। एक जहाज़ के उनके परिचित कप्तान एरिक हंट के कहने पर उन्होंने अफ्रीका के पूर्वी तट पर स्थित कोमोरो द्वीप समूह पर भी ये पोस्टर लगाए। 21 दिसम्बर, 1952 को आंजुआन नामक द्वीप पर हंट के पास दो स्थानीय व्यक्ति एक बड़ी मछली लेकर आए। यह मछली भी सीलाकैन्थ ही थी और इसे स्थानीय भाषा में ‘मेम’ या ‘गोम्बोसा’ कहा जाता था। हंट को यह भी पता चला कि इस प्रजाति की मछलियाँ अक्सर कोमोरो द्वीप समूह में पाई जाती हैं। हंट ने कहीं से फॉर्मलीन का जुगाड़ किया और मछली के शरीर में इंजेक्शन से पहुँचा दिया। चूँकि उन दिनों कोमोरो द्वीप समूह फ्रांस के अधीन था, अतः फ्रांसीसी अधिकारियों ने हंट से कहा कि यदि प्रोफेसर स्मिथ स्वयं इस मछली को लेने नहीं आए तो वे उसे ज़ब्त कर लेंगे। तब हंट ने स्मिथ को एक और तार भेज कर तुरन्त कोमोरो पहुँचने का आग्रह किया। स्मिथ को चिन्ता थी कि वे 14 वर्षों से जिस मछली का बेसब्री से इन्तज़ार कर रहे थे कहीं उसे खो न बैठें। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के प्रधानमंत्री मलान से सम्पर्क करके उन्हें कोमोरो ले जाने के लिए एक हवाई जहाज़ उपलब्ध कराने का अनुरोध किया, जिसे मलान ने मान लिया और वायु सेना का एक जहाज़ उन्हें उपलब्ध करवाया। जब स्मिथ ने कोमोरो पहुँच कर हंट के जहाज़ पर मछली को देखा तो खुशी के मारे उनके आँसू छलक पड़े। स्मिथ को एक साबुत मछली मिल गई थी जिसके सारे आन्तरिक अंग सुरक्षित थे। साथ ही, स्थानीय निवासियों का उस मछली से परिचय होने के कारण उन्हें यह भी पता चल गया था कि उन्हें और भी मछलियाँ उस क्षेत्र में मिल सकती हैं। इन आन्तरिक अंगों का परीक्षण करके स्मिथ ने कई शोध पत्र प्रकाशित किए। किन्तु फ्रांस के अधिकारियों को ऐसा लगा कि उनके साथ धोखा हुआ है और उन्होंने फ्रांस के अलावा अन्य

देशों के वैज्ञानिकों के द्वारा सीलाकैन्थ पर शोध कार्य करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जो 1970 के दशक में कोमोरो द्वीपों के आज़ाद होने तक जारी रहा।

1956 में एक दुर्घटना में हंट का जहाज़ डूब गया और उनकी मृत्यु हो गई। 1968 में लम्बी बीमारी से परेशान होकर प्रोफेसर स्मिथ ने आत्महत्या कर ली। सन् 1988 में कैप्टन गूजेन की मृत्यु हो गई। मार्जरी लैटिमर 97 वर्ष की लम्बी उम्र जीने के बाद 2004 में संसार से विदा हो गईं।

कुछ जैविक जानकारी

सीलाकैन्थ की लम्बाई लगभग 5 फीट और भार 45 कि.ग्रा. होता है। ठण्डा वातावरण पसन्द होने के कारण ये मछलियाँ दिन में समुद्र की सतह से 650 से 1300 फीट तक की गहराई पर किनारे में कटी हुई गुफाओं में आराम करती हैं और रात में शिकार की खोज में सतह पर आती हैं। अफ्रीका के पूर्वी तट पर इस प्रकार की गुफाओं की संख्या बहुत अधिक होने के कारण वहाँ पर इन मछलियों को अनुकूल पर्यावरण मिल जाता है। इनका भोजन सभी प्रकार की मछलियाँ होती हैं। इनके जबड़े का जोड़ लचीला होने के कारण इनका मुँह काफी चौड़ा होता है जिसके कारण ये बड़ी मछलियों को भी निगल जाती हैं।

रात के समय समुद्र की सतह पर आने के कारण सीलाकैन्थ उन मछुआरों के जाल में कभी-कभी फंस जाती हैं जो रात में छोटी नावों में मछलियाँ पकड़ने के लिए निकलते हैं। वैसे इनके बदबूदार मांस के कारण इन्हें कोई खाना पसन्द नहीं करता और इसलिए इनका कोई व्यावसायिक महत्व नहीं होता।

सीलाकैन्थ मछलियों के अण्डे लगभग एक साल तक मादा के गर्भ में ही रहते हैं और वहीं फूटते हैं। इनमें से निकलने वाले शिशु जन्म से ही पूरी तरह विकसित होते हैं।

फिलहाल जीवित सीलाकैन्थ की संख्या का अनुमान लगाना कठिन है, किन्तु समय-समय पर की गई गणनाओं के अनुसार अफ्रीका के तट पर इनकी संख्या एक हज़ार के आसपास हो सकती है। संसार के वैज्ञानिक दक्षिण अफ्रीका सरकार के साथ मिल कर एक परियोजना के माध्यम से यह प्रयास कर रहे हैं कि इनके शिकार पर पाबन्दी लगे और इनकी संख्या बढ़ाई जा सके।

एक जीवित नमूने की खोज

किन्तु सीलाकैन्थ की कहानी यहीं खत्म नहीं होती। सितम्बर, 1997 में इंडोनेशिया के सुलावेसी द्वीप में एक सीलाकैन्थ पकड़ी गई। उस समय अमरीकी जीव शास्त्री मार्क अर्डमन और उनकी पत्नी अर्नाज वहाँ छुट्टियाँ बिता रहे थे। उन्होंने बाज़ार में इस मछली को देखा ज़रूर किन्तु वे उसका फोटो भर ले सके और किसी अन्य व्यक्ति ने उस मछली को खरीद लिया।

तब अर्डमन ने भी सीलाकैन्थ पकड़ कर लाने वाले के लिए इनाम की घोषणा की। 30 जुलाई, 1998 को मछुआरे एक जीवित सीलाकैन्थ को पकड़ कर अर्डमन के पास ले आए। कोमोरो सीलाकैन्थ से इस प्रजाति का रंग भिन्न है और इसे *लैटिमरिया मेनाडोएन्सिस* नाम दिया गया है क्योंकि इसे मेनाडो द्वीप के समीप पकड़ा गया था। स्थानीय मछुआरे इस मछली से परिचित थे और इसे राजा लाउट (समुद्र का राजा) के नाम से पुकारते थे।

धरती पर रहने वाले जन्तुओं के पूर्वजों को लेकर वैज्ञानिकों के दो मतों (फेफड़े वाली मछलियाँ बनाम सीलाकैन्थ) के विवाद का फैसला इन मछलियों के जीन्स का परीक्षण करके ही किया जा सकता था, किन्तु मुश्किल यह थी कि किसी भी सीलाकैन्थ के अंगों को इतनी सावधानीपूर्वक सुरक्षित नहीं रखा गया था कि उनके जीन्स का विश्लेषण किया जा सके।

दक्षिण अफ्रीका में शुरू की गई सीलाकैन्थ पर्यावरण परियोजना की प्रेरणा स्रोत रोड्स विश्वविद्यालय की प्रोफेसर रोज़मेरी डॉरिंगटन थीं। उन्होंने कोमोरो द्वीप समूह के गाँवों में घूम कर इस परियोजना की जानकारी दी थी और स्थानीय वैज्ञानिकों को किसी सीलाकैन्थ के पकड़े जाने पर उसके आन्तरिक अंगों को सुरक्षित रखने का



अफ्रीका के पूर्व तट के समुन्दर में केन्या के मछुआरों द्वारा पकड़ी गई सीलाकैन्थ, 2001

प्रशिक्षण दिया था। मोरोनी कस्बे में उनका प्रतिनिधि सैयद अहमदा नामक पर्यावरणविद् था। सन् 2003 में कोमोरो द्वीप समूह में एक मछुआरे ने सीलाकैन्थ पकड़ी और उसे वह सैयद अहमदा के पास लेकर आया। अहमदा ने उस मछली के आन्तरिक अंगों को सावधानी-पूर्वक निकाल कर स्थानीय विज्ञान केन्द्र के फ्रीज़र में सुरक्षित रख लिया। कुछ ही दिनों के बाद अहमदा को परियोजना के सम्मेलन में भाग लेने के लिए ईस्ट लंदन जाने का अवसर मिला। बर्फ के बक्से में रख कर सीलाकैन्थ के आन्तरिक अंग वे अपने साथ ले गए और प्रोफेसर डॉरिंगटन को दिए। डॉरिंगटन ने पहला काम यह किया कि प्रयोगशाला में जाकर इन अंगों का सूक्ष्मदर्शी से परीक्षण करके यह देखा कि वे उचित ढंग से सुरक्षित रखे गए थे या नहीं।

अब समस्या यह थी कि इन अंगों से कोशिकाएँ निकाल कर उनके जीन्स का परीक्षण कहाँ किया जाए। संसार में गिनी-चुनी प्रयोगशालाओं के पास ही इस काम के लिए उपयुक्त आधुनिक उपकरण उपलब्ध थे। तब उन्होंने वॉशिंग्टन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर क्रिस अमेमिया से सम्पर्क किया।

अमेमिया सीलाकैन्थ की कहानी से प्रभावित तो थे ही। उन्होंने तुरन्त अपनी सहमति देकर काम शुरू कर दिया। उनके द्वारा किए गए जीनोम परीक्षण से यह फैसला होना था कि हमारे असली पूर्वज कौन हैं - मांसल पंखों वाले सीलाकैन्थ या फेफड़े वाली मछलियाँ?

लगभग 100 वैज्ञानिकों की टीम ने, जिसमें वैज्ञानिक और कम्प्यूटर विशेषज्ञ शामिल थे, आखिर सीलाकैन्थ के जीनोम का नक्शा बना लिया। इसके बाद उसके जीन्स की तुलना अन्य मछलियों, फेफड़े वाली मछलियों, कशेरुकी जन्तुओं और मनुष्य के जीन्स के साथ करने का काम शुरू हुआ। इस विषय पर अमेमिया और उनके सहयोगियों ने कई शोध पत्र प्रकाशित किए। फेफड़े वाली मछलियों का जीनोम इतना बड़ा होता है कि उसका पूरा विश्लेषण करना सम्भव नहीं हो पाया है, किन्तु सीलाकैन्थ के जीनोम पर अब तक हुए काम से लगता है कि फेफड़े वाली मछलियाँ हमारी अधिक निकट की पूर्वज हैं। सीलाकैन्थ हमारे चचेरे-ममेरे पूर्वज हैं।

अरविन्द गुप्तेः उच्च शिक्षा में एक लम्बे दौर तक प्राणीशास्त्र का शिक्षण देने के बाद डाइट, उज्जैन के प्राचार्य पद पर भी रहे हैं। 1997 में प्रशासन अकादमी, भोपाल से सेवानिवृत्त। एकलव्य के शैक्षणिक कार्यक्रमों से लम्बा जुड़ाव, इन्दौर में निवास।

यह लेख स्रोत फीचर्स के अंक मई, 2014 से लिया गया है।